प्राचीन भारत के इतिहास के अध्ययन के स्रोत
(Sources of Study of Ancient Indian History)

प्राचीन भारत के अध्ययन के स्रोत

- पुरातात्विक साक्ष्य
  - अभिलेख
  - सिक्के
  - विभिन्न कला रूप- अध्ययन स्रोत के रूप में अधिक प्रामाणिक क्योंकि इसमें फेरबदल करने की गुंजाइश बहुत कम।
- साहित्यिक साक्ष्य — प्रचुरता से जानकारी प्रदान करना, परन्तु विचार को सावधानी से अपनाने की जरूरत।
  - देशी साहित्य
  - विदेशी साहित्य —
    - भारतीय इतिहास के कुछ कालों की जानकारी इनके माध्यम से ही संभव। उदाहरण के लिए, चौथी सदी ई. पू. में उत्तर-पश्चिम भारत का इतिहास।
    - देशी लेखकों की तुलना में ये जाति एवं क्षेत्रीय पूर्वाग्रह से मुक्त होकर लिखते थे।
    - यूनानी एवं रोमन लेखक
      - सिकन्दर के इतिहासकार
        - नियार्कस
        - अरिस्टोबुलस
        - अनासिक्रिटिज, मेगस्थनीज
      - रोमन लेखक (ईसा की आरम्भिक सदी)-
        - स्ट्रैबो, टॉलेमी, डायोडोरस, एरियन
    - चीनी लेखक
      - फाह्यान (गुप्तकाल चौथी सदी)- पाटलिपुत्र एवं मध्यदेश
      - ह्वेनसांग
    - अरबी लेखक
      - सुलेमान
      - अल-मसूदी
      - अलबरुनी

पुरातात्विक स्रोत

प्राचीन भारत के इतिहास के अध्ययन के लिये पुरातात्विक साक्ष्यों का अपना महत्त्व है। पुरातात्विक स्रोत कहीं-कहीं पर स्वतंत्र रूप से, तो कहीं-कहीं साहित्यिक स्रोत के पूरक के रूप में अध्ययन को सरल बनाते हैं, खासकर ऐसे काल में जिसका साहित्यिक साक्ष्य अस्पष्ट और भ्रामक होता है। पुरातात्विक साक्ष्यों में अभिलेख, सिक्के, स्मारक तथा भवन, मूर्तियाँ, चित्रकला एवं अन्य अवशेषों को रखा जा सकता है।

■ अभिलेख

पुरातात्विक स्रोतों में **अभिलेख** सर्वाधिक महत्त्व का है। प्राचीन भारत में अधिकांश अभिलेख मुहरों, प्रस्तर स्तंभों, स्तूपों, चट्टानों, ताम्रपत्रों, मंदिर की दीवारों, मूर्तियों या ईंटों पर मिलते हैं। अभिलेखों के अध्ययन की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि इनकी लिखावट में छेड़छाड़ की गुंजाइश कम रहती है। अत: अध्ययन स्रोत के रूप में इसे सबसे प्रामाणिक माना जाता है। भारत में ज्ञात सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक के हैं। ये अभिलेख बहुधा प्रस्तर स्तंभों या शिलाओं पर खुदे हुए हैं तथा साम्राज्य के कोने-कोने तक विस्तृत हैं। इस अभिलेख से अशोक के शासनकाल, उसके शासन की प्रकृति तथा प्रशासन के स्वरूप पर इतना प्रकाश पड़ता है कि उसे प्राप्त साहित्यिक स्रोतों से मिलाकर पढ़ने पर मौर्य काल को समझने में दिक्कत नहीं आती। अशोक के मास्की तथा गुर्जरा जैसे अभिलेखों के माध्यम से ही उसके नाम का पता चल पाया है।

इसके अलावा, ताम्र-पत्र पर अंकित भूमि अनुदान-पत्र, मंदिरों तथा मूर्तियों पर उत्कीर्ण निजी अभिलेख भी पाये गये हैं। इससे तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था पर काफी प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त, कलिंग के शासक खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख, रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख आदि भारतीय इतिहास की अनेक विस्मृत घटनाओं से हमारा परिचय कराते हैं।

इसी प्रकार, समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति, राजा चंद्र का मेहरौली अभिलेख, हर्षवर्द्धन का मधुबन एवं बाँसखेड़ा अभिलेख, दक्षिण भारत के सातवाहनों, चोलों, चालुक्यों, राष्ट्रकूटों आदि के अभिलेखों से राजनीतिक इतिहास के अतिरिक्त प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक स्थिति की जानकारी मिलती है। अभिलेखों में तिथि रहने से काल निर्धारण की समस्या भी नहीं रह जाती है। जहाँ तिथि नहीं भी है, वहाँ लिपि के आधार पर काल निर्धारण किया जा सकता है। अभिलेखों से अनेक साहित्यिक विवरणों की भी पुष्टि हो जाती है।

■ सिक्के

प्राचीन भारत के सिक्कों का अध्ययन अपने आप में दिलचस्पी का विषय है। इन सिक्कों के अध्ययन से हमें एक

साथ कई बातों की जानकारी प्राप्त होती है। एक तरफ सिक्कों की उपस्थिति बेहतर व्यापारिक गतिविधियों की सूचना देती है। सिक्कों पर राजाओं के नाम शासकों की वंशावली को स्पष्ट करते हैं। उसी प्रकार, सिक्कों पर देवताओं के चित्र धार्मिक विश्वास को दर्शाते हैं। सबसे बढ़कर सिक्कों की बनावट धातु विज्ञान तथा कलात्मक उपलब्धियों की ओर भी संकेत करती है।

प्राचीन भारत में आहत सिक्कों का प्रचलन लगभग पाँचवीं शताब्दी ई.पू. में आरंभ हुआ। चूँकि ये सिक्के, व्यापारिक निगमों के द्वारा जारी किए जाते थे, इसलिए इस पर किसी राजा का नाम अंकित नहीं होता। राजाओं के नाम पर सिक्के जारी करने वाले भारत के प्रथम शासक इण्डो-ग्रीक शासक थे, अत: ये सिक्के राजनीतिक इतिहास जानने के भी साधन बन गए। हम सिक्कों के आधार पर ही जान पाते हैं कि भारत में 30 इण्डोग्रीक शासकों ने शासन किया था। फिर इस काल में सिक्कों पर देवताओं के चित्र भी उकेरे जाने लगे। इण्डोग्रीक शासकों के सिक्कों पर कृष्ण एवं बलराम के चित्र अंकित थे। मौर्योत्तर काल में आगे शक, कुषाण एवं सातवाहनों ने विभिन्न प्रकार के सिक्के जारी किए। इन सिक्कों पर राजाओं के चित्र के साथ-साथ देवताओं के चित्र भी अंकित हैं। इन सिक्कों के निर्माण में धातुओं की विविधता के साथ-साथ बनावट में भी विविधता बनी रही।

आगे सिक्कों के निर्माण में कलात्मक निपुणता गुप्तकालीन सिक्कों में देखने को मिलती है। इस काल में छोटे मूल्य के सिक्कों के बजाय बड़े मूल्य वाले सिक्कों की प्रधानता बनी रही। सर्वप्रथम गुप्त शासक चंद्रगुप्त प्रथम ने कुषाण मॉडल पर स्वर्ण सिक्के जारी किए थे। आगे उसके उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त एवं चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने भारतीय मॉडल पर भी स्वर्ण सिक्के जारी किए। वस्तुत: प्राचीन काल में सर्वाधिक संख्या में स्वर्ण सिक्के गुप्त शासकों के द्वारा ही जारी किए गए।

गुप्त काल में सर्वप्रथम चाँदी का सिक्का जारी करने का श्रेय गुप्त शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य को दिया जाता है। उसने शक शासक को पराजित कर गुजरात विजय के उपलक्ष्य में चाँदी के सिक्के जारी किए थे। आगे गुप्त शासक स्कंदगुप्त ने कार्षापण मॉडल पर सिक्के निर्गत किए। इस काल में ताँबे के सिक्के अपेक्षाकृत कम मिलते हैं। सबसे बढ़कर, गुप्तकालीन सिक्के कलात्मक उत्कर्ष को दर्शाते हैं। इस काल में सिक्कों के निर्माण में बेहतरीन टंकण पद्धति देखने को मिलती है। सिक्कों पर शासक एवं विभिन्न देवताओं के चित्र उकेरे गए। गुप्तकालीन मूर्तिकला एवं चित्रकला में जो उत्कृष्टता देखने को मिलती है, वह गुप्तकालीन सिक्कों पर बने चित्रों में भी उभरकर आती है। चन्द्रगुप्त प्रथम के 'सम्राट एवं साम्राज्ञी' कोटि के सिक्कों के पृष्ठ भाग में सिंह पर बैठी दुर्गा का चित्र है। समुद्रगुप्त के द्वारा भी कई प्रकार के सिक्के जारी किए गए। इनमें अश्वेमध प्रकार, व्याघ्र प्रकार एवं वीणा-वादन प्रकार के सिक्के महत्वपूर्ण हैं। उसी प्रकार, चंद्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धर प्रकार के सिक्के तथा कुमारगुप्त प्रथम के सिक्कों पर कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी का चित्र उत्कृष्ट कला के उदाहरण हैं।

परंतु गुप्त काल के पश्चात् इन बेहतरीन सिक्कों के नमूने लगभग गायब से प्रतीत होते हैं। आगे के काल में न तो सिक्कों की बहुलता दिखती है और न ही धातु की शुद्धता और न ही सिक्कों पर खुदे हुए चित्रों की विविधता। गुप्त काल के पश्चात्, जैसा कि आर. एस. शर्मा जैसे विद्वान मानते हैं कि न केवल सिक्कों का, वरन् सिक्के बनाने वाले साँचे की भी कमी पड़ गई। आगे पाल शासकों के कुछ सिक्के तथा गहड़वाल शासकों के सिक्के मिले हैं।

इसके कारणों की व्याख्या के मुद्दे पर विद्वानों के बीच मतभेद है। आर. एस. शर्मा इसे व्यापार के पतन से जोड़कर देखते हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ विद्वान इस मत को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि सिक्कों का प्रचलन बना हुआ था, परंतु सिक्कों के स्वरूप में परिवर्तन आ चुका था अर्थात् संभवत: सिक्कों के निर्माण में धातु के बदले कुछ अन्य वस्तुओं का प्रयोग होने लगा था।

अभ्यास प्रश्न- ***आप इस विचार को, कि गुप्तकालीन सिक्का शास्त्रीय कला की उत्कृष्टता का स्तर बाद के समय में नितांत दर्शनीय नहीं है, किस प्रकार सही करेंगे? (UPSC-2017, 150 शब्द)***

■ स्थापत्य कला, मूर्तिकला एवं चित्रकला

विभिन्न प्रकार के **स्मारकों, भवनों, मंदिरों, मूर्तियों तथा चित्रकला की शैली** आदि से भी प्रचुर अध्ययन सामग्री प्राप्त हो जाती है। विभिन्न प्रकार के स्मारक से जहाँ उसकी शैली का ज्ञान होता है, वहीं उनके निर्माता के विषय में भी सूचना मिल जाती है तथा यह सूचना भी प्राप्त होती है कि उनके निर्माण का प्रयोजन क्या था? यही बात मंदिर तथा मूर्तियों पर भी लागू होती है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो की खुदाई से जिस नगर का अवशेष मिलता है, उसी के आधार पर हड़प्पा सभ्यता का पुनर्निर्माण संभव हो पाया है। इन्हीं अवशेषों से ज्ञात हो पाया है कि समाज, आर्थिक रूप से विभाजित था। इसी प्रकार विभिन्न बंदरगाहों की खुदाई (अरिकामेडु) से तथा वहाँ मिलने वाले पुरावशेषों से ज्ञात होता है कि किन-किन देशों से भारत के व्यापारिक संबंध थे।

इसी प्रकार, नालंदा एवं विक्रमशिला के खंडहरों से इन स्थानों की गरिमा प्रकट होती है। तक्षशिला और मथुरा से प्राप्त मूर्तियों के आधार पर गांधार और मथुरा मूर्तिकला की जानकारी

मिलती है। साँची, भरहुत के स्तूप, अजंता, एलोरा, एलिफेंटा, बाघ की गुफाएँ तथा दक्षिण भारत के मंदिर प्राचीन शिल्पकला एवं चित्रकला के विकास पर प्रकाश डालते हैं।

इन सबके अलावा कुछ अन्य पुरातात्विक अवशेष भी कभी-कभी अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार के मृद्भांड, खिलौनों तथा मुहरों आदि से भी हड़प्पा काल के अध्ययन में सहायता मिलती है। मोहनजोदड़ो तथा अन्य हड़प्पाई स्थलों से प्राप्त 500 मुहरों के आधार पर ही सिंधु सभ्यता के धार्मिक विश्वास की व्याख्या हो सकी है। इस प्रकार की मुहरों से तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था तथा वाणिज्य-व्यापार का भी ज्ञान होता है।

साहित्यिक स्रोत

अध्ययन स्रोत के रूप में साहित्यिक साक्ष्य किसी काल विशेष के सभी आयामों की विस्तार से जानकारी प्रदान करता है, परंतु इसके द्वारा दी गयी सूचनाओं का बहुत ही सतर्कता से उपयोग करने की जरूरत होती है। प्राचीन भारत के इतिहास के अध्ययन में साहित्यिक स्रोतों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में रखकर समझा जा सकता है- देशी साहित्य एवं विदेशी साहित्य। फिर देशी साहित्य को भी दो भागों में बाँट सकते हैं-धार्मिक साहित्य तथा गैर-धार्मिक साहित्य।

- **धार्मिक साहित्य**

धार्मिक साहित्य को **ब्राह्मण साहित्य, बौद्ध साहित्य तथा जैन साहित्य** के रूप में विभाजित किया जा सकता है। ब्राह्मण साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान **वेदों या श्रुति अथवा संहिता** को दिया गया है। इनकी संख्या चार है- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। इन ग्रंथों से आर्यों के विस्तार एवं उनकी धार्मिक मान्यताओं तथा संस्कृति के साथ-साथ उनके राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास की झलक मिलती है। **उपनिषद्** उत्तरवैदिक काल की रचना है जो किसी न किसी वेद से संबद्ध है। इसमें आर्यों के प्राचीनतम दार्शनिक ज्ञान की झलक मिलती है।

आगे उपलब्ध साहित्यिक स्रोतों में **महाभारत, रामायण और पुराण** अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। महाभारत का अंतिम संकलन लगभग 400 ई. के आस-पास माना जा सकता है। महाभारत की रचना का श्रेय महर्षि व्यास को दिया जाता है। आरंभ में रचना के समय इसमें 8800 श्लोक मात्र थे, परंतु अंतिम संकलन के समय इसके श्लोकों की संख्या बढ़कर 24000 हो गई। इसकी मूल कथा कौरवों तथा पांडवों के मध्य हुए युद्ध की है जो उत्तर वैदिक काल तक की हो सकती है। रामायण की रचना संभवतः ई.पू. पाँचवीं सदी में प्रारम्भ होकर ईसा की बारहवीं सदी तक चलती प्रतीत होती है। इस ग्रंथ में अयोध्या (कोशल) के शासक राम द्वारा लंका विजय का वर्णन है। इसमें आर्य तथा द्रविड़ भौगोलिक क्षेत्रों के अलावा वहाँ की सामाजिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि को भी बखूबी दिखाया गया है, खासकर पितृसत्तात्मक परिवार, विभिन्न भाईयों के मध्य प्रेम, स्त्रियों की स्थिति तथा मनुष्य का प्रकृति से लगाव आदि विषय को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

पुराणों की संख्या मुख्य रूप से **अट्ठारह** बताई गई है। इनमें मत्स्य, मार्कण्डेय, विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड तथा गरूड़ पुराण प्रमुख हैं। सबसे प्राचीन पुराण में मत्स्य पुराण की गिनती होती है। मत्स्य, वायु तथा विष्णु पुराणों में राजवंशों का वर्णन है। यद्यपि इन पुराणों में राजवंशों के संबंध में दिये गये विवरण परस्पर भिन्न हैं, तथापि महाभारत युद्ध के पश्चात् जिन राजवंशों ने ईसा की छठी शताब्दी तक राज किया, उसके विषय में जानकारी प्राप्त करने का एकमात्र साधन पुराण ही हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के स्रोत के रूप में **बौद्ध साहित्य** की महत्वपूर्ण भूमिका दिखती है। बौद्ध ग्रंथ का मूल **त्रिपिटक** है। इसमें **सुत्त पिटक, विनय पिटक तथा अभिधम्म पिटक** शामिल हैं। सुत्त पिटक में भगवान बुद्ध के वचनों तथा धार्मिक विचारों को शामिल किया गया है। विनय पिटक में बौद्ध संघ के नियमों का उल्लेख है। अभिधम्म पिटक में गूढ़ बौद्ध दर्शन का विवेचन है। इन बातों के अलावा, तीनों पिटक बुद्ध की मृत्यु के समय तथा उनके उपरांत की राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों पर भी प्रकाश डालते हैं।

इसके अलावा **जातक कथा** से भी तत्कालीन समाज पर प्रकाश पड़ता है। जातक कथा में बुद्ध के पूर्वजन्म की कहानी है। **वंश साहित्य** (दीपवंश, महावंश) से श्रीलंका के इतिहास का ज्ञान होता है। **पिटकेत्तर साहित्य** में **मिलिन्दपञ्हो** महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें हिन्द यूनानी राजा मिनाण्डर तथा बौद्ध भिक्षु नागसेन के मध्य दार्शनिक वाद-विवाद उद्धृत है। इसी ग्रंथ से प्राचीन शाकल (स्यालकोट) नगर की भव्यता तथा उसके आर्थिक महत्व का पता चलता है। इसी तरह अंगुत्तर निकाय से सोलह महाजनपदों का विवरण मिलता है। बौद्ध साहित्य भारत के अन्य देशों से वैदेशिक संबंध के बारे में भी महत्वपूर्ण सूचना देता है।

जैन ग्रंथों का अंतिम संकलन ईसा की छठी सदी में हुआ। अनेक महत्वपूर्ण जैन ग्रंथों से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है, जैसे-भगवती सूत्र से जहाँ एक तरफ भगवान महावीर के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है, वहीं दूसरी तरफ सोलह महाजनपदों का भी उल्लेख मिलता है। भद्रबाहुचरित से चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल की घटनाओं पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इसके अलावा, हेमचंद्र कृत परिशिष्टपर्वन, हरिभद्रसूरी के समरादित्यकथा तथा जिनसेन के आदिपुराण जैसे ग्रंथ भी अध्ययन के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण हैं।

■ गैर-धार्मिक साहित्य

अध्ययन के स्रोत के रूप में **गैर-धार्मिक साहित्यिक साक्ष्यों** का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऐसे साहित्यों में अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक गतिविधियों की प्रचुर झलक मिलती है। जैसे- **पाणिनि कृत अष्टाध्यायी** से हमें पूर्व मौर्यकाल की जानकारी प्राप्त हो जाती है। **विशाखदत्त के मुद्राराक्षस** से मौर्य काल की घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। मौर्यकाल के लिये जानकारी का सबसे अच्छा स्रोत **कौटिल्य** की रचना **अर्थशास्त्र** को माना जाता है। इस ग्रंथ से मौर्यकालीन राजनीतिक आदर्शों, आर्थिक साधन बढ़ाने के उपायों, तत्कालीन समाज की स्थिति आदि की विस्तृत चर्चा मिलती है।

इसके अतिरिक्त, **गार्गी संहिता** से भारत पर होने वाले यवन आक्रमण का उल्लेख मिलता है। **पतंजलि के महाभाष्य** से शुंग वंश के इतिहास का पता चलता है। **कालिदास के मालविकाग्निमित्रम्** से शुंग कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन की झलक मिलती है। यहीं से पता चलता है कि अग्निमित्र ने किस प्रकार यवन आक्रमण को भारत के अन्य भागों में प्रसारित होने से रोका। साहित्यिक साक्ष्यों में विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने संरक्षकों के लिए लिखी जीवनी का महत्वपूर्ण योगदान है। जैसे-**बाणभट्ट के हर्षचरित** से हर्षवर्द्धन के राज्यकाल की गूढ़ जानकारी प्राप्त होती है।

■ विदेशी साहित्य

देशी साहित्यों के अतिरिक्त प्राचीन भारत के इतिहास को जानने का प्रमुख स्रोत है विदेशी लेखकों का विवरण। प्राचीन काल में भी भारत शेष विश्व से कटा नहीं रहा था। बाह्य विश्व से इसका निरंतर संपर्क रहा था। अत: समय-समय पर विदेशी यात्री भारत आते रहे तथा अपने यात्रा वृत्तांत छोड़ते रहे हैं, जो कि प्राचीन भारत के इतिहास को जानने का प्रमुख स्रोत बन गया है। हम सुविधा की दृष्टि से विदेशी विवरण को कई समूह में बाँटकर देख सकते हैं-

• यूनानी-रोमन लेखक

सिकंदर के साथी इतिहासकारों; यथा- नियार्कस, अरिस्टोबुलस, अनासिक्रीट्ज आदि के विवरण के माध्यम से ही हम चौथी सदी ई.पू. में उत्तर-पश्चिम भारत के इतिहास को समझ पाते हैं। इतना ही नहीं, जब एक ब्रिटिश विद्वान विलियम जोंस ने यूनानी विवरण में सेंड्रोकोटस की पहचान चंद्रगुप्त मौर्य से की, तो भारत की इतिहास की गुत्थी सुलझ गई। फिर आगे चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में यूनानी शासक सेल्यूकस निकेटर के राजदूत मेगस्थनीज द्वारा लिखित पुस्तक 'इंडिका' से मौर्यकालीन प्रशासन, कर प्रणाली, आर्थिक गतिविधियों, समाज एवं धार्मिक गतिविधियों पर प्रकाश पड़ता है। ईसा की आरंभिक शताब्दियों में भारत के संदर्भ में रोमन लेखकों का विवरण प्राप्त होने लगता है। ये लेखक थे-प्लिनी, स्ट्रैबो, डायोडोरस, एरियन आदि। इन लेखकों के विवरण से भारत एवं रोम के बीच व्यापार, सामुद्रिक गतिविधियाँ, बंदरगाह आदि की सूचना प्राप्त होती है।

• चीनी लेखक

भारत आने वाले चीनी विद्वानों में फाह्यान तथा ह्वेनसांग प्रमुख हैं। फाह्यान चौथी सदी के अंत में गुप्त शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में भारत आया था। वह मुख्यत: यहाँ बौद्ध संघों का अवलोकन तथा महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथों की पांडुलिपियों के संग्रह के लिए आया था। उसने उत्तर भारत एवं मध्य देश की यात्रा की थी। उसने पाटलिपुत्र का भी विवरण दिया है। उसके लेखन से तात्कालिक धर्म, समाज तथा प्रशासनिक आदर्शों पर प्रकाश पड़ता है। लेकिन कहीं-न-कहीं उसके विवरण पर धर्म का गहरा रंग चढ़ा हुआ दिखाई देता है, उदाहरण के लिए, भारतीय प्याज-लहसुन नहीं खाते थे, भारत में दंड विधान अत्यधिक नरम था, आदि।

एक अन्य चीनी यात्री, जिसका विवरण सातवीं सदी का इतिहास जानने का एक प्रमुख स्रोत है, वह है ह्वेनसांग। ह्वेनसांग भी धार्मिक उद्देश्य से प्रेरित होकर बौद्ध ग्रंथों की पांडुलिपि की खोज करते हुए भारत आया था। उसने उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक विभिन्न क्षेत्रों का दौरा किया। उसने भारत के अपने अनुभव एवं अवलोकन को 'पश्चिम के रिकॉर्ड' (सी-यू-की) के नाम से संकलित किया। फाह्यान की तुलना में ह्वेनसांग का विवरण अधिक व्यापक एवं प्रभावशाली है। ह्वेनसांग ने राजनीतिक घटनाक्रम में भी रुचि ली है। उसके विवरण से हर्षवर्द्धन तथा उसके काल के राजनीतिक घटनाक्रम के साथ-साथ आर्थिक सामाजिक घटनाओं की भी सूचना मिलती है। वह नालंदा विश्वविद्यालय से जुड़ा रहा था तथा दक्षिण में काँचीपुरम् में उसने शिक्षा प्राप्त की। उसने कुछ नगरों की पतनोन्मुख अवस्था का भी उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, पाटलिपुत्र। यद्यपि कहीं-कहीं ह्वेनसांग भी धर्म के प्रभाव में अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण देता है। उदाहरण के लिए, ह्वेनसांग के अनुसार हर्षवर्द्धन ने अपने साम्राज्य में पशु हत्या पर पाबंदी लगा दी थी, भारत में लोग अपने माता-पिता का अत्यधिक आदर करते हैं।

• अरबी लेखक

विदेशी यात्रियों की श्रृंखला में अरबी लेखकों के विवरण का भी अपना अलग महत्व है। अरबों की सिंध विजय के पश्चात् अरब विश्व से भारत का नियमित संपर्क हुआ।

9वीं सदी में भारत की यात्रा करने वाला एक प्रमुख अरब विद्वान सुलेमान था। उसने जिस समय भारत की यात्रा की थी, उस समय पूर्वी भारत में पाल वंश का शासन था। वह राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष का बड़ा प्रशंसक था। उसके अनुसार अमोघवर्ष

ने अपने राज्य में मुसलमानों को धार्मिक स्वतंत्रता दी थी तथा उन्हें मस्जिद बनाने की भी अनुमति दी थी। सुलेमान ने अमोघवर्ष की गणना चार महान शासकों में की है।

एक अन्य अरब यात्री, अलमसूदी ने 10वीं सदी में भारत की यात्रा की थी। वह विद्वान होने के साथ-साथ भूगोलवेत्ता एवं इतिहासवेत्ता भी था। उसे अरब क्षेत्र का 'हेरोडोटस' भी कहा जाता है। उसका जिस समय भारत में आगमन हुआ था, उस समय कन्नौज एक प्रतिहार शासक, मिहिरभोज, के अधीन था।

फिर भारत आने वाले अरब यात्रियों में से सबसे महत्वपूर्ण यात्री था अबुरेहान अलबरूनी। वह 11वीं सदी के आरंभ में महमूद गजनी के साथ भारत आया था। उसने अपने विवरण को अरबी में लिखित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'किताब-उल-हिंद' में संकलित किया है। उसका विवरण 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास को जानने का प्रमुख स्रोत है। उसे भारतीय संस्कृति में इतनी गहरी रुचि थी कि उसने भारतीय संस्कृति को समझने के लिए संस्कृत सीखी। वह भारत की वर्णव्यवस्था के अलावा सती प्रथा एवं बहुविवाह जैसी सामाजिक बुराईयों की भी चर्चा करता है।

अभ्यास प्रश्न- भारत के इतिहास की पुनर्रचना में चीनी और अरबी यात्रियों के वृत्तान्तों के महत्व का आकलन कीजिए। (UPSC-2018, 150 शब्द)

प्रश्न- भारतीय संस्कृति का प्रसार भारतीय उपमहाद्वीप तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर भी इसने पहुँच बनायी। अथवा

भारतीय कला के अध्ययन के बिना पूर्वी एशिया एवं दक्षिण एशिया की कला का इतिहास अधूरा रह जाएगा। इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उत्तर- बाह्य विश्व के साथ प्राचीन भारत के आर्थिक संबंधों का पर्याप्त अध्ययन हुआ है, परन्तु सांस्कृतिक संबंधों का अपेक्षित अन्वेषण नहीं हो पाया है। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि जिन क्षेत्रों के साथ भारत के आर्थिक संबंध रहे, उनके साथ सांस्कृतिक संबंध भी स्थापित हुए तथा व्यापारियों, ब्राह्मणों, बौद्ध भिक्षुओं, जैन-संतों एवं स्वतंत्र उद्यमियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का अन्य क्षेत्रों में भी प्रसार हुआ।

कुषाणों के काल में रेशम मार्ग से भारत का प्रत्यक्ष सम्पर्क था, अतः इस काल में मध्य एशिया और पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। एक बौद्ध विद्वान कुमारजीव ने चौथी सदी में उस क्षेत्र की यात्रा की। इस काल में चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ, फिर वहाँ से यह धर्म जापान एवं तिब्बत में फैल गया। धर्म के साथ-साथ बौद्ध साहित्य एवं चित्रकला का भी प्रसार हुआ। अश्वघोष की अधूरी नाट्यकृति सारिपुत्रप्रकरण मध्य एशिया से प्राप्त हुई है। उसी प्रकार, मध्य एशिया में एक स्थल तांग हुआंग से बौद्ध गुफा चित्रकला का साक्ष्य मिलता है।

आगे दक्षिण-पूर्व एशिया में भी भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। इन क्षेत्रों में बौद्ध संस्कृति एवं ब्राह्मण संस्कृति दोनों का योगदान रहा। बताया जाता है कि उत्तर-भारत के एक महाकाव्य रामायण का देशी संस्करण दक्षिण-पूर्व एशिया में विकसित हुआ। रामकथा के प्रभाव का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल में थाईलैण्ड की राजधानी का नाम आयुथिया रखा गया है, जो अयोध्या से समानता रखता है। ब्राह्मण धर्म एवं संस्कृति को फैलाने में पल्लव एवं चोल शासकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। कम्बोडिया के अंगकोरवाट में एक भव्य विष्णु मंदिर का निर्माण किया गया। उसी प्रकार, इण्डोनेशिया के बोरोबुदूर नामक स्थान पर विश्व का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर निर्मित हुआ।

परन्तु भारतीय उपमहाद्वीप से बाहर भारतीय संस्कृति के प्रसार का अध्ययन करते हुए दो बातों पर गौर करना आवश्यक है। प्रथम, भारतीय संस्कृति क्षेत्रीय स्तर पर मौलिक रूप में स्थापित नहीं हुई, बल्कि क्षेत्रीय तत्वों के साथ सम्पर्क के परिणामस्वरूप इसका स्वरूप बदल गया। दूसरे, यह एक तरफा प्रसार नहीं था क्योंकि बदले में इसने भारत को भी प्रभावित किया। वर्तमान में भारत में पान एवं सुपाड़ी का इतना व्यापक प्रचलन दिखता है, परन्तु यह दक्षिण-पूर्व एशिया से ही लिया गया है।

वर्तमान में भारत के इस प्राचीन सम्पर्क सूत्र का व्यापक महत्व है। इसने दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ भारत के संबंधों के आधार को बदल दिया तथा इसने सांस्कृतिक कूटनीति का आधार निर्मित किया। भारत एवं दक्षिण-पूर्व एशिया की साझी संस्कृति का ज्वलंत उदाहरण है- नालंदा यूनिवर्सिटी प्रोजेक्ट।

प्रश्न- प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यह निर्धारित कीजिए कि यह विविधता में एकता का उदाहरण कैसे बना?

उत्तर-

धर्म:

- ईसा की आरम्भिक शताब्दियों तक धर्म के क्षेत्र में **आर्य एवं गैर-आर्य तत्वों का मिश्रण** तथा अवतारवाद के माध्यम से आर्य एवं गैर-आर्य देवताओं के बीच एकीकरण।
- **उत्तर एवं दक्षिण भारत के बीच नियमित धार्मिक आदान-प्रदान-** उत्तर से ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का दक्षिण में आगमन हुआ, फिर उत्तर से पुराणों पर आधारित भक्ति दक्षिण गई और वहाँ संगम साहित्य में भक्ति का एक नया संस्करण तैयार हुआ। इसने 600-700 वर्षों के बाद उत्तर-भारत पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा। फिर

भक्ति, मंदिर एवं मूर्ति पूजा, ये सभी उत्तर एवं दक्षिण दोनों समाज के लक्षण बन गये।

भाषा-साहित्यः

- उत्तर में आर्य भाषा, जबकि दक्षिण में द्रविड़ भाषा विकसित हुई, परन्तु उत्तर की महत्वपूर्ण आर्य भाषा संस्कृत को दक्षिण में भी स्वीकृति मिली। साथ ही, संस्कृत के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथ दक्षिण में लिखे गये। हमें यह ज्ञात हो कि अद्वैत चिंतन पर शंकराचार्य की टीका एवं रामानुज की रचना दक्षिण में ही लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त द्रविड़ भाषाओं में लिखे साहित्य पर भी जहाँ–तहाँ उत्तर का प्रभाव देखा जा सकता था।

कलाः

- **स्थापत्य कला**– द्रविड़ शैली के विकास में नागर शैली के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार, नागर शैली ने भी द्रविड़ शैली की कुछ विशेषताओं को अपनाया। उदाहरण के लिए, मण्डप का निर्माण। उसी प्रकार, वेसर शैली का विकास, नागर शैली और द्रविड़ शैली के बीच सामंजस्य के परिणामस्वरूप हुआ है।
- **चित्रकला**– अजन्ता चित्रकला के विकास में दक्षिण के राजवंशों का भी योगदान रहा है। अजन्ता चित्रकला ने एलोरा तथा सित्तनवासल की पल्लव चित्रकला तथा तंजौर स्थित चोल चित्रकला पर निर्णायक प्रभाव छोड़ा।
- **मूर्तिकला**– सारनाथ कला ने एलोरा की मूर्तिकला, पल्लव एवं चोल कालीन मूर्तिकला पर भी अपना प्रभाव छोड़ा।

भारत का न केवल विशाल भौगोलिक आकार रहा है, बल्कि यहाँ सांस्कृतिक विविधता भी रही है, परन्तु इस 'विविधता के बीच एकता' का सूत्र खोजना कठिन नहीं है।

प्रश्न– भारत में विविधता के किन्हीं चार सांस्कृतिक तत्वों का वर्णन कीजिए और एक राष्ट्रीय पहचान के निर्माण में उनके आपेक्षिक महत्व का मूल्य निर्धारण कीजिए।

(UPSC-2015)

प्रश्न का अर्थ-अन्वेषणः– *इस प्रश्न का दायरा बहुत विस्तृत है। यह अपने स्वरूप में बहुआयामिक है तथा प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान भारत तक एकता के सूत्र को खोजने का प्रयास करता है। इस प्रश्न में भारतीय राष्ट्रवाद के विशिष्ट स्वरूप की ओर भी संकेत है, जिसे 'विविधता में एकता' का नाम दिया जाता है।*

उत्तर– संस्कृति राष्ट्र–निर्माण में न केवल प्रमुख अवयव का कार्य करती है, अपितु राष्ट्र के चरित्र को भी निर्धारित करती है। अतः भारत के बहु–सांस्कृतिक रूप ने भारतीय राष्ट्र को एक पृथक चरित्र प्रदान किया है।

भारत में विविधता के चार प्रमुख सांस्कृतिक तत्व के रूप में हम धर्म तथा दर्शन, भाषा–साहित्य एवं कला को ले सकते हैं। धार्मिक विविधता, भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अभिलक्षण रही है। जिसे हम 'हिंदू धर्म' के नाम से जानते हैं, वह किसी विशेष काल खंड में विकसित नहीं हुई और न ही इसमें एक खास तत्व का योगदान है। आर्य तथा गैर–आर्य धार्मिक पंथों के मिश्रण से हिंदू धर्म का विकास हुआ। भक्ति, अवतारवाद तथा मूर्तिपूजा सभी गैर–आर्य पंथ की देन हैं। यहाँ धार्मिक विविधता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण यह है कि भारत के अधिकांश भाग में देवी दुर्गा की पूजा होती है, तो कुछ क्षेत्रों में महिषासुर की पूजा भी होती है। कम्बन के तमिल रामायण का झुकाव रावण की ओर है। आगे मध्यकाल में भी एकीकरण एवं समन्वय की प्रक्रिया चलती रही। इसका ज्वलंत प्रमाण है भक्ति तथा सूफी आंदोलन। मध्यकाल में हिंदू एवं मुस्लिम दोनों ने साथ–साथ रहते हुए समन्वित संस्कृति का निर्माण किया। भक्ति एवं सूफी आंदोलन उसी समन्वित संस्कृति की अभिव्यक्ति है।

इसी प्रकार की विविधता दर्शन के क्षेत्र में भी मौजूद रही है। प्राचीन भारत में स्वतंत्र वाद–विवाद की लम्बी परंपरा रही है। अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'Argumentative Indian' में इस मुद्दे को उठाया है। विविधता का एक प्रमाण यह है कि हमारे कुछ प्राचीन चिंतक आत्मा को मानते हैं, तो कुछ अनात्मवादी हैं। उसी प्रकार, कुछ चिंतक कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा को मानते हैं, तो कुछ उन्हें अस्वीकार करते रहे हैं।

फिर भाषा–साहित्य के क्षेत्र में विविधता तो विदेशियों को भी अचम्भित करती रही है। भारत में अनेक भाषाएँ प्रचलित रही हैं, यथा– हिंदी, बांग्ला, उड़िया, मैथिली, मराठी, गुजराती, तेलुगु, तमिल, कन्नड़ आदि। इसके अतिरिक्त कला के क्षेत्र में कम विविधता देखने को नहीं मिलती। प्राचीन काल में स्थापत्य कला की दो प्रमुख शैलियाँ नागर एवं द्रविड़ विकसित हुई थीं, फिर इन दोनों को मिलाकर वेसर शैली का विकास हुआ। समन्वय की प्रक्रिया मध्यकाल में भी चलती रही। मुस्लिम शासन के अंतर्गत मेहराबी तथा शहतीरी शैली के बीच सामंजस्य देखने को मिलता है। उसी प्रकार, मूर्तिकला, चित्रकला आदि क्षेत्र में भी अभिजात्य तथा लोकतत्व के बीच सामंजस्य दिखता है।

सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात् हमने इस विविधता को अपनी कमजोरी बनाने के बदले उसे अपनी शक्ति बना लिया। हमारे संविधान निर्माताओं ने भी इस विविधता का सम्मान किया तथा संविधान की आठवीं अनुसूची में 14 भाषाओं को जगह दी। पश्चिमी राष्ट्र के विपरीत, जिसने एक भाषा एक राष्ट्र का नारा दिया था, भारत 14 राष्ट्रभाषाओं पर आधारित (वर्तमान में 22 भाषाएँ) राष्ट्र बना। इस प्रकार, भारत ने वैकल्पिक राष्ट्रवाद का मॉडल प्रस्तुत किया तथा इसे 'विविधता में एकता' का नाम दिया गया।

प्रश्न– हर्षवर्द्धन का सांस्कृतिक योगदान बताइए।

उत्तर– हर्षवर्द्धन कन्नौज के शासक के रूप में तब स्थापित हुआ, जब उत्तर भारत में विघटन की प्रक्रिया चल रही थी। हर्षवर्द्धन ने न केवल उस राजनीतिक विघटन की प्रक्रिया पर अंकुश लगाया, बल्कि उसने साहित्य एवं कला को भी संरक्षण दिया।

1. **धार्मिक सद्भाव की नीति**– हर्षवर्द्धन एवं उसके पूर्वज सूर्य के उपासक थे, परन्तु हर्ष ने महायान बौद्ध धर्म को ग्रहण किया और उसे संरक्षण दिया।
2. **लोक कल्याणकारी कार्य**– मार्ग निर्माण, कुआँ खुदवाना, मार्ग के किनारे छायादार वृक्ष लगवाना आदि।
3. **शिक्षा को संरक्षण**– नालन्दा विश्वविद्यालय के संचालन के लिए 100 गाँव अनुदान के रूप में देना।
4. **विद्वानों को संरक्षण**– हर्षवर्द्धन स्वयं एक बड़ा विद्वान था। हर्ष ने नागानन्द, प्रियदर्शिका तथा रत्नावली की रचना की। इसके अतिरिक्त उसने अन्य विद्वानों को भी संरक्षण दिया। जैसे– बाणभट्ट, मयूर।
5. **स्थापत्य निर्माण**– अनेक स्तूपों एवं मंदिरों का निर्माण। उदाहरण के तौर पर, कन्नौज एवं नालंदा में बौद्ध विहार की स्थापना तथा सिरपुर में एक लक्ष्मण मंदिर का निर्माण।

■■■

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR